तेजस्विनावधीतमस्तु
पूर्वांचल विश्वविद्यालय, गोरखपुर

डॉ0 विजय कान्त दुबे
रीडर, दर्शनशास्त्र विभाग,
काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
ज्ञानपुर – 221304, (संत रविदास नगर, भदोही)

दूरभाष : (05414) 50505,
मो0नं0 : 9415273849
A/01, न्यू प्रोफेसर्स कालोनी,
छात्रावास परिसर,
ज्ञानपुर–221304, (सं0र0न0 भदोही)

पत्रांक.............

दिनांकः 15 मई 2007

प्रमाण पत्र

*प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती कृष्णा अरोड़ा शोध छात्रा, काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर (संत रविदास नगर भदोही) ने **"जैन एवं बौद्ध दर्शनों में आत्मा सम्बन्धी अवधारणा का तुलनात्मक अध्ययन"** विषय पर मेरे निर्देशन में शोध कार्य किया है। इन्होंने वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उत्तर प्रदेश द्वारा निर्धारित सभी नियमों एवं शर्तों का पालन किया है। यह शोध प्रबन्ध इनके मौलिक चिन्तन एवं अध्ययन का परिणाम है। मैं इसे पी–एच0डी0 उपाधि हेतु परीक्षण के लिए अग्रसारित करता हूँ।*

V.B.S. Purvanchal University

अग्रसारित

11.6.07

प्राचार्य

(डॉ0 विजय कान्त दुबे)
शोध निर्देशक

प्राचार्य
काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
ज्ञानपुर-सन्त रविदास नगर भदोही

11.06.07
Head
Reader, Deptt. of Philosophy
K. N. GOVT. P. G. COLLEGE
GYANPUR - BHADOHI

प्राक्कथन

सृष्टि का श्रेष्टतम प्राणी मनुष्य जब अपनी बौद्धिक पिपासा के कारण जगत् एवं उसमें अपनी स्थिति के विषय में गहन जिज्ञासा करता है तब उसका चिन्तन दार्शनिक रूप ग्रहण कर लेता है। यह चिन्तन दार्शनिक क्षेत्र को निर्धारित करता है। एक ओर जहाँ मनुष्य स्व–चिन्तन के माध्यम से अपनी सत्ता स्वरूप एवं लक्ष्य का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, वहीं दूसरी तरफ पर–चिन्तन के द्वारा वह वाह्य जगत् में निहित अन्यान्य विषयों का ज्ञान भी प्राप्त करना चाहता है। भारतीय चिन्तन मूलतः आत्मा की खोज का प्रयत्न है। "आत्मानं विद्धिः" भारतीय दर्शन का मूल मंत्र है और इसके लिए 'कोऽहम्' से लेकर 'सोऽहम्' तक जो यात्रा है उसी आत्म तत्व की खोज है। हर युग के चिन्तकों ने इसके सम्बन्ध में अपने–अपने विचार व्यक्त किये हैं। भले ही कुछ दार्शनिकों ने आत्मा के अस्तित्व का निषेध किया हो, किन्तु आत्मा ने इनके विचार मन्थन को अछूता नहीं छोड़ा है। एतद्र्थ, आत्म तत्व भारतीय दार्शनिक चिन्तन मुख्य केन्द्र रहा है और मानव इस विश्व का केन्द्र बिन्दु।

विकास प्रक्रिया के प्रारम्भिक अवस्था में मानवीय जीवन का लक्ष्य भले ही क्षुधा की तृप्ति रहा हो, किन्तु सामुदायिक जीवन के विकास के साथ ही उसमें धार्मिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक चेतना का भी विकास हुआ। समकालीन वैज्ञानिक युग में मनुष्य पदार्थ के विषय में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर चुका है, किन्तु वह अपने स्वरूप से अनभिज्ञ है। जब तक मनुष्य अपने को नहीं पहचान लेता तब तक उसका सम्पूर्ण ज्ञान अर्थ हीन है। उसका चरम लक्ष्य है आत्म कल्याण एवं जगत् सेवा का उदार भाव। इसी लक्ष्य के चलते मनुष्य स्वरूपतः परमात्मा का साकार रूप, परमसत्ता का अंशावतार, ईश्वर का युवराज, जेष्ठ पुत्र एवं सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट कृति माना जाता है। नर ही नारायण के समीप एवं निकट है और मानव ही देवत्व का सच्चा प्रतीक–प्रतिनिधि है। वह स्व की गहराई में उतर कर ही आत्म दर्शन कर सकता है। ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में ईश्वर के लिए पुरूष संज्ञा का प्रयोग किया गया है। श्रुति में उसकी 'पुरूषो वै सुकृतम' और श्री मद् भागवत में 'दुर्लभो मानुषो देहा' कह कर

महिमा गान किया गया है। जैन दर्शन में मानव जीवन को शुभ लक्षण युक्त बतलाया गया है, तो बौद्धों ने उसे देवोपम मानकर मानव शरीर को अति उत्तम बतलाया है। इनके अनुसार, मानव रूप प्राप्त करने पर ही सत्य ज्ञान की उपलब्धि सम्भव है। बाईबिल मानव को ईश्वर की प्रिय सन्तान, तो कुरान उसे अल्लाह का बन्दा कहते हैं। शंकराचार्य ने मनुषत्व को प्रधानता प्रदान की है, तो विवेकानन्द ने मानव में पशुता, मानवता एवं देवत्व का संयोग माना है। इसी प्रकार श्री अरविन्द एवं अन्यान्य समकालीन वेदान्तियों ने मनुष्य के अन्दर देवत्व एवं दिव्यत्व दोनों को निहित माना है। पाश्चात्य विद्वान एस0 ई0 क्राफ्ट ने मानव को ईश्वर से तनिक नीचे, तो एल्डुअस हक्सले ने मानव में ईश्वरीय गुण का निरूपण किया है और यही सब वह आधार है जहाँ 'अवतारवाद' की भावना उत्पन्न होती है। मानवता को उत्तम कर्मों के प्रति प्रेरित करना ही अवतारी चेतना का परमलक्ष्य होता है। इसी भाव–बोध के कारण ही राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर आदि को अवतार के रूप में अपनाया जाता है।

जहाँ तक मानव के ध्येय या लक्ष्य का प्रश्न हो सकता है, निःसंदेह यह कहा जा सकता है कि मनुष्य पंच महाभूतों का संघात मात्र नहीं है, उसमें विकास की अनन्त सम्भावनाएँ निहित हैं। चूँकि आत्म तत्व भारतीय दर्शन की चिन्तन का मुख्य केन्द्र रहा है इसलिए भारत में आत्म चिन्तन की प्रधानता रही है। पाश्चात्य दर्शनों में आत्म चिन्तन की समस्या अधिक प्रधान नहीं रही है। प्लेटो के दर्शन में प्रत्यय जगत् की प्रधानता रही, तो अरस्तू के दर्शन में आकार और द्रव्य की। देकार्त और स्पीनोजा के दर्शन में द्रव्य का विचार प्रधान रहा तो ईसाई धर्म में ईश्वर तत्व ही प्रधान है। इसी प्रकार हेगेल और ब्रैडले के दर्शन में निरपेक्ष प्रत्यय की प्रधानता रही है। इसके विपरीत भारतीय चिन्तन परम्परा में आत्मवाद की कुछ अपनी विशिष्टता रही है जो अन्यत्र नहीं पायी जाती। भारतीय दर्शन का आत्म चिन्तन इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसका सीधा सम्बन्ध मोक्षवाद से है। भारत में मानव जीवन का प्रधान लक्ष्य मोक्ष ही है। पुनर्जन्म की सिद्धि के लिए आत्मा की अमरता को

मानना आवश्यक है। चार्वाक के अतिरिक्त प्रायः सभी भारतीय दर्शन मोक्ष या मुक्ति को ही जीवन का अंतिम लक्ष्य मानते हैं। कर्म एवं पुनर्जन्म सिद्धान्त भी मोक्ष से सम्बन्धित है। पुनर्जन्म के सिद्धान्त ने ही आत्मा की अमरता को जन्म दिया तो मोक्षवाद के सिद्धान्त ने आत्मा के स्वरूप की अवधारणा को बल दिया है। जैन एवं बौद्ध दर्शन दोनों ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करते है, किन्तु आत्म तत्व का उनके दर्शन में विशेष महत्व है।

जैन दर्शन अवैदिक भारतीय दार्शनिक चिन्तन परम्परा का एक महत्वपूर्ण दर्शन है। इसमें भी आत्मा (जीव) की ही वह प्रमुख अवधारणा है जिससे सम्पूर्ण जैन धर्म दर्शन ओत–प्रोत है। जैन दर्शन के नैतिक नियम लम्बी अवधि तक भारतीय जनमानस को व्यावहारिक रूप में नियंत्रित एवं प्रभावित करते रहे हैं। उपनिषदों में जिस आत्मा की चर्चा मिलती है, उसका उल्लेख ऋग्वेद में नहीं मिलता, यद्यपि ऋग्वेद में यह विचार है कि आत्मा शरीर आदि से भिन्न तत्व है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उपनिषदों के पूर्व भी आत्मा का विचार विद्यमान था। यह निश्चित है कि उपनिषदों का आत्मा सम्बन्धी विचार वैदिक विचारों से भिन्न है और आत्म विद्या पुनर्जन्म एवं मोक्ष से सम्बन्धित है। उपनिषदों में आत्म तत्व चिन्तन ही मुख्य विषय रहा है। किन्तु, इनमें आत्मा सम्बन्धी विचार एक जैसा नहीं है जैसा कि राधाकृष्णन् ने भी माना है। ऋग्वेद में इसका अर्थ प्राण बताया गया है। धीर–धीर आगे चलकर इसका अर्थ 'आत्मा' अथवा 'अहम्' हो गया। छान्दोग्य उपनिषद में बताया गया है कि आत्मा वह है जो जरा–मरण से रहित तथा शोक और भूख प्यास से रहित है। यह सभी द्वन्दों से रहित है। इसी प्रकार सामान्यतः सम्पूर्ण वैदिक चिन्तन परम्परा में आत्मा को नित्य, कूटस्थ, व्यापक आदि माना गया है। जिससे ज्ञात होता है कि वैदिक चिन्तन परम्परा स्थूल से सूक्ष्म की ओर उन्मुख रही है।

निरीश्वरवादी जैन दर्शन का आत्म चिन्तन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जैन स्वीकृत सात तत्वों में आत्म तत्व को प्रथम द्रव्य स्वीकार किया गया है तथा अन्य छः अजीव या जड़ द्रव्य हैं। उन सभी का महत्व जीव के कारण है। जैन दर्शन में आत्मा सम्बन्धी अवधारणा

निरीश्वरता के कारण प्रमुख एवं मौलिक हो जाती है। इस दर्शन में वर्णित सात तत्वों, नौ पदार्थों और छः द्रव्यों में आत्म तत्व ही चैतन्य स्वरूप है। जैन दर्शन में आत्मा के अनेक नाम प्रयुक्त होते हैं। जैनियों ने आत्मा एवं जीव में भेद नहीं किया है, जबकि वैदिक परम्परा में आत्मा एवं जीव में भेद करते हुए आत्म तत्व को प्रमुखता प्रदान की गयी है। जैन दर्शन में आत्मा को स्वतः सिद्ध, अनादि, अनन्त, अमूर्तक, अविनाशी और असंख्यात प्रदेशी द्रव्य माना गया है। तत्वार्थ सूत्र में द्रव्य के दो लक्षण उपलब्ध होते हैं। इसमें द्रव्य को सत् स्वरूप कहकर सत् को उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप कहा गया। द्रव्य का यह लक्षण आत्मा में पाया जाता है। यद्यपि अन्य भारतीय दार्शनिक आत्मा को नित्य मानते हैं, लेकिन ये उसे अपरिणामी मानते हैं। जैन दर्शन में आत्मा को शरीरपरिमाण मानते हुए निश्चय एवं व्यवहारनय के आधार पर नित्य एवं अनित्य दोनों रूपों में व्याख्यायित किया गया है। यद्यपि कि जैन दर्शन को निरपेक्षता से परहेज रहा है। शायद इसीलिए उसमें आत्मा के व्यावहारिक रूप में अनित्यत्व स्वरूप को ग्रहण किया गया है। जैन दर्शन में आत्मा के छः विशेष गुण माने जाते हैं--ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, चेतनत्व और अमूर्तत्व। जैन एवं न्याय–वैशेषिक, सांख्य–योग, मीमांसा और अद्वैत वेदान्त इन सभी दर्शनों में मोक्ष का अर्थ आत्म लाभ ही प्रतिपादित किया है।

जैन दर्शन में शुद्धात्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख एवं अनन्त वीर्य स्वरूप माना गया है। संवर और निर्जरा के द्वारा समस्त कर्मों का क्षय हो जाने पर मोक्ष में आत्मा को अपने स्वरूप की उपलब्धि हो जाती है। न्याय वैशेषिक दार्शनिक चैतन्य को आत्मा का स्वाभाविक गुण न मानकर उसे आगन्तुक गुण मानते हैं। प्रभाकर मीमांसक भी इस मत का समर्थन करते हुए मुक्तात्मा में चेतना का अभाव मानते हैं। सांख्य–योग दर्शन में आत्मा को प्रकृति से भिन्न चैतन्य स्वरूप माना गया है। इसी प्रकार वेदान्त दर्शन भी आत्मा को नित्य मुक्त एवं ज्ञान स्वरूप मानता है, जिसका न तो बन्धन हो सकता है और न ही मुक्ति। अद्वैत वेदान्त में आत्मा और हममें तादात्म्य में है। भारतीय दर्शन विशेषतः जैन दर्शन एवं

वैदिक दर्शन में मोक्ष का अर्थ किसी पदार्थ से योग करना नहीं है, वरन् मोक्ष का अर्थ आत्म लाभ या अपने वास्तविक स्वरूप की उपलब्धि है।

जैन दर्शन की ही भाँति बौद्ध दर्शन भी निरीश्वरवादी, अवैदिक चिन्तन परम्परा का पोषक रहा है। अनात्मवाद का प्रतिपादन करते हुए भी बौद्ध दर्शन में कर्म–पुनर्जन्म एवं मोक्ष(निर्वाण) में प्रबल विश्वास प्रगट किया गया है। जिसके कारण बौद्धों की आत्मा सम्बन्धी अवधारणा अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है। इस अवधारणा का महत्व भारतीय दर्शन में इसलिए भी है क्योंकि अनेकों वैदिक मान्यताओं को न मानने के बावजूद भी जैनों एवं बौद्धों ने आत्म तत्व का प्रतिपादन अत्यन्त गम्भीरता से किया है। बौद्धों ने क्षणभंगवाद एवं प्रतीत्यसमुत्पाद के माध्यम से अनात्मवाद का समर्थन करते हुए नित्यात्मवाद का खण्डन किया और बताया कि आत्मा अनित्य एवं पंच स्कंधों का क्षणिक समूह मात्र है। यह पंच स्कंध दीपशिखा की भाँति क्रमबद्धता के कारण (संतान प्रवाह) नित्य प्रतीत होते हैं जबकि इनमें मात्र एक श्रृँखलाबद्ध क्रमिकता ही है। कुछ विद्वानों के मतानुसार बौद्ध दर्शन में आत्मा की सत्ता को न तो स्वीकार किया गया है और न ही उसका निषेध किया गया है। आत्मा सम्बन्धी प्रश्न पूँछे जाने पर गौतम बुद्ध मौन हो जाते थे, ऐसा इसलिए कि न तो वे स्थिरिता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करना चाहते थे न ही क्षणिकवाद का खण्डन। इसका एक कारण यह भी है कि बौद्ध दर्शन अपने मध्यम मार्ग को छोड़ना नहीं चाहता। कुल मिलाकर बौद्धों के अनुसार, आत्मा नाम का कोई नित्य तत्व नहीं है। जिस प्रकार धुरी, चक्र, नेमि का समूह रथ कहा जाता है उसी प्रकार नाम–रूप को आत्मा कहा जाता है, जो विज्ञानों का प्रवाह मात्र है। इस प्रकार बौद्ध दर्शन भी कर्म–पुनर्जन्म, बन्धन एवं मोक्ष की अवधारणा को तो सीधे–सीधे स्वीकार करता है, किन्तु आत्मा के स्वरूप को लेकर वह अन्य भारतीय मतों, यहाँ तक जैन दर्शन से भी अन्तर रखता है। यद्यपि कि जैन एवं बौद्ध दोनों दर्शन संवर, निर्जरा, कर्म, पुनर्जन्म, मोक्ष एवं मोक्ष प्राप्ति की प्रक्रिया में विश्वास रखते हुए मतैक्यता भी रखते हैं।

इन दोनों दर्शनों के आत्मा सम्बन्धी मतों का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि इनमें मतान्तर के साथ–साथ कुछ न कुछ मतैक्य अवश्य है। दूसरे शब्दों में, इन दोनों दर्शनों के आत्मा सम्बन्धी अबधारणा का तुलनात्मक अध्ययन कर स्थिति को और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के माध्यम से हमने जैन और बौद्ध दर्शनों में आत्मा सम्बन्धी अवधारणा का विवेचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन कर दर्शन में एक अभिन्न चिन्तन धारा स्थापित करने का प्रयास किया है, जिससे ज्ञान को एक नवीन आयाम मिल सकेगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में आठ अध्यायों के माध्यम से जैन एवं बौद्ध दर्शनों में आत्मा सम्बन्धी अवधारणा के तुलनात्मक अध्ययन पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है, जिनके कुछ मूल बिन्दु इस प्रकार हैं–

प्रथम अध्याय 'भूमिका' में विभिन्न भारतीय दर्शनों में आत्मा की सामान्य अवधारणा पर प्रकाश डालते हुए मानव के वास्तविक स्वरूप एवं लक्ष्य पर भी चर्चा की गयी है। इस अध्याय के अंतर्गत वेद मत में आत्मा पर चर्चा करते हुए उपनिषदों में आत्मा का स्वरूप एवं उसकी स्थिति का वर्णन किया गया है। गीता एवं सांख्य–योग का पुरूषात्मवाद साथ ही साथ न्याय वैशेषिक मीमांसा मत और वेदान्तीय चिन्तन परम्परा में आत्मा के स्वरूप को व्याख्यायित किया गया है, जिसमें समकालीन चिन्तकों–डा0 राधाकृष्णन्, श्री अरविन्द, विवेकानन्द एवं गॉधी आदि वेदान्तियों के आत्मा सम्बन्धी मंतों की चर्चा की गयी है। अवैदिक चिन्तन परम्परा के अंतर्गत चार्वाक के देहात्मवाद के साथ ही साथ निरीश्वरवादी जैन एवं बौद्ध मत पर भी प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय 'जैन दर्शन में आत्मा का स्वरूप' के अंतर्गत जैन दर्शन में जीव द्रव्य या आत्म तत्व को स्पष्ट करते हुए आत्मा के अनेकता एवं उसके प्रकारों की चर्चा की गयी है जिसमें संसारी तथा मुक्त आत्मा (अशुद्ध एवं शुद्ध आत्मा) का भेद चैतन्य गुण, शुद्धता, मानसिकता, इन्द्रियों, गति एवं अध्यात्म आदि के आधार पर विवेचन

किया गया है। जीवात्मा के स्वरूप को स्पष्ट करने हेतु निश्चयनय एवं व्यवहारनय के आधार पर जैन दर्शन में जो चर्चा हुई है उस पर भी इस अध्याय में प्रकाश डाला गया है। अध्याय के अन्त में आत्मा के उपयोग स्वरूप और जीव परिणाम पर चर्चा करते हुए जैन दर्शन में आत्मा के अस्तित्व सिद्धि हेतु जो तक्र या प्रमाण दिये गये हैं उस पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

'बौद्ध दर्शन में आत्मा सम्बन्धी अवधारणा' इस शोध प्रबन्ध के तृतीय अध्याय का विषय है जिसमें निरीश्वरवादी बौद्धों के अनात्मवादी अवधारणा की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालना आवश्यक समझा गया है, क्योंकि तत्कालीन प्रचलित आत्मा सम्बन्धी अवधारणाओं में बुद्ध को सत्कायवादी दृष्टिदोष दिखाई पड़ता था। इसलिए महात्मा बुद्ध ने अनात्मवाद या नैरात्मवाद का शाश्वतवाद एवं उच्छेदवाद के मध्यम मार्ग का अनुशरण करते हुए वर्णन किया है। अनात्मवाद के पांच रूप – पुद्गल नैरात्मवाद, पुद्गलास्तिवाद, त्रैकालिक धर्मवाद एवं वर्तमान धर्मवाद, धर्मनैरात्म–निःस्वभाव या शून्यवाद और विज्ञप्ति मात्रतावाद का वर्णन करते हुए प्रस्तुत अध्याय में आत्मा सम्बन्धी पंच स्कंधो का वर्णन भी किया गया है। चूँकि अनात्मवादी अवधारणा में व्यक्तित्व की संरचना एवं क्षणभंगवाद एक प्रमुख समस्या के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं, इसलिए इन पर विचार करना भी प्रस्तुत अध्याय में तर्कसंगत समझा गया है। अंततः अनात्मवाद एवं निर्वाण के सम्बन्ध पर विचार करते हुए समकालीन चिन्तकों के मत के आधार पर अनात्मवाद के भावात्मक एवं निषेधात्मक पक्ष पर भी विचार इसी अध्याय के अंतर्गत किया गया है।

चूँकि आत्मा का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में कर्म, पुनर्जन्म एवं मोक्ष से है, इसलिए अध्याय चार 'जैन दर्शन में आत्मा एवं कर्म–पुनर्जन्म सम्बन्धी मत' में जैन दर्शन में वर्णित कर्म का अर्थ एवं उसकी परिभाषा स्पष्ट करते हुए नोकर्म अथवा अकर्म पर भी इस अध्याय में विचार किया गया है। साथ ही साथ कर्म सिद्धान्त की मूल मान्यताओं, कर्म के स्वरूप एवं आत्मा से उसके सम्बन्ध पर भी प्रकाश डाला गया है। इसी अध्याय के अंतर्गत

जैन सम्मत कर्म एवं पुनर्जन्म प्रक्रिया और स्वभाव तथा शक्ति के आधार पर जैन दर्शन में उल्लिखित कर्म के भेदों पर भी प्रकाश डाला गया है। भाव एवं द्रव्य कर्म, ज्ञानावरणीय कर्म, दर्शनावरणीय कर्म, वेदनीय कर्म आदि आठों प्रकार के घातीय एवं अघातीय कर्मों का वर्णन के साथ ही साथ कर्म विपाक, कर्म की अवस्था और मूर्त रूप में कर्मों की सिद्धि के वर्णन को इसी अध्याय के अंतर्गत विवेचित करना तक्र संगत समझा गया है।

अध्याय पाँच 'बौद्ध दर्शन में आत्मा एवं कर्म पुनर्जन्म सम्बन्धी मत' में बौद्ध दर्शन में कर्म शब्द के प्रयोग, जिसमें उसने चेतना को प्रमुखता दी है, और उसके अर्थ, स्वरूप तथा प्रकारों की चर्चा की गयी है। शुभाशुभ कर्मों की कसौटी पर विचार करते हुए कर्म के दूसरे पक्ष अकर्म पर भी विचार किया गया है। कर्म विपाक प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए कर्म की अवस्था और नियतता तथा कर्म और आत्मा में सम्बन्ध पर भी विचार किया गया है। अनित्यात्मवाद में पुनर्जन्म को कैसे तक्र संगत माना जा सकता है, इसका स्पष्टीकरण कर्म एवं पुनर्जन्म प्रक्रिया एवं प्रतीत्यसमुत्पाद अथवा भव चक्र के माध्यम से किया गया है। भव चक्र के द्वादश अंगों का वर्णन भी इसी अध्याय में हुआ है।

'जैन दर्शन में आत्मा एवं बन्धन मोक्ष' नामक छठें अध्याय में बन्धन के अर्थ व स्वरूप, प्रकार पर द्रव्य एवं भाव दोनों दृष्टियों से विचार किया गया है। बन्धन के अन्यान्य भेद–प्रभेदों की विवेचना करते हुए बन्धन के कारणों (आस्रव, मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय एवं योग) की विवेचना प्रस्तुत अध्याय का मन्तव्य है। जीवात्मवादी जैन दर्शन के मोक्ष सम्बन्धी दृष्टिकोण पर विहंगम रूप से विचार करना एवं संवर और उसके कारणों साथ ही साथ निर्जरा एवं उसके प्रकारों, त्रिविध साधना मार्गों (जिसमें पंच महाव्रत पर भी विचार किया गया है।) पर प्रकाश डालते हुए अंततः गुण स्थानों की चर्चा और मुक्ति के जैन मंतव्य को स्पष्ट करना प्रस्तुत अध्याय का ध्येय है।

सातवें अध्याय 'बौद्ध दर्शन में बन्धन एवं मोक्ष' के अंतर्गत अनात्मवादी बौद्धों के चतुः आर्य सत्य के दृष्टिकोण से बन्धन एवं मोक्ष के स्वरूप को व्याख्यायित करने का प्रयास हुआ

है। बौद्ध मत में, बन्धन को दुःख के रूप में निरूपित करते हुए दुःख के भेदों एवं कारणों की जो चर्चा हुयी है उस पर इस अध्याय में प्रकाश डाला गया है। जैन दर्शन की ही भाँति चूँकि बौद्ध दर्शन भी आस्रव, अविद्या एवं संवर की प्रक्रिया में विश्वास रखता है, इसलिए तुलनात्मक दृष्टि से इन पर भी विचार करना उचित समझा गया है। इसी अध्याय में बौद्ध मत में निर्वाण के अर्थ व स्वरूप को अन्यान्य बौद्ध मतों के दृष्टिकोण से विवेचित किया गया है, तत्पश्चात् अर्हत एवं बोध सत्व के आदर्श पर चर्चा की गयी है। अध्याय के अन्त में अष्टांगिक मार्गों पर प्रकाश डालते हुए मुक्ति के मार्ग के रूप में शील, समाधि एवं प्रज्ञा सम्बन्धी मत को भी व्याख्यायित किया गया है।

शोध प्रबन्ध के अध्याय आठ 'विभिन्न दार्शनिक मतों के साथ जैन एवं बौद्ध की आत्मा सम्बन्धी मतों का तुलनात्मक अध्ययन एवं उपसंहार' के अंतर्गत तुलनात्मक दृष्टि से वैदिक परम्परा में निहित आत्मा सम्बन्धी अवधारणा के साथ ही साथ कुछ पाश्चात्य आत्मवादियों के मतों की भी तुलना की गयी है। चूँकि शोध प्रबन्ध का मूल उद्देश्य जैन एवं बौद्ध दर्शन में आत्मा सम्बन्धी अवधारणा है, अतएव इन दोनों निरीश्वरवादी मतों के अनात्मवादी एवं जीवात्मवादी अवधारणा पर तुलनात्मक दृष्टि से मत समता एवं विषमता दोनों ही पक्षों पर विचार किया गया है। इसी अध्याय में जैन के जीवात्मवाद की तुलना अन्य भारतीय आत्मवादी मतों से पृथक–पृथक रूप में की गयी है। अध्याय के अन्त में समीक्षात्मक दृष्टिकोण से बौद्धों के अनात्मवाद एवं जैनियों के जीवात्मवाद एवं आत्म परिमाणवाद आदि आत्मा सम्बन्धी मतों की वर्तमान संदर्भ में उपादेयता के आधार पर समीक्षा की गयी है। उपसंहार के माध्यम से यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि जैन एवं बौद्ध दोनों ही निरीश्वरवादी एवं अवैदिक चिन्तन परम्परा के पोषक हैं, दोनों ही मत कर्म, पुनर्जन्म एवं मोक्ष में प्रबल विश्वास रखते हैं, किन्तु बौद्ध अनात्मवाद का प्रतिपादन करते हैं जबकि जैनियों ने जीवात्मवाद का प्रतिपादन किया है तथापि वे व्यवहार एवं निश्चयनय के आधार पर आत्मा को नित्य एवं अनित्य दोनों रूपों में स्वीकार करते हैं, इसलिए इन मतों में मत विषमता के

साथ कुछ न कुछ मत समता अवश्य है, क्योंकि दोनों ही दर्शनों का उद्देश्य जीवों को दुःख से मुक्ति प्रदान करना है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में उन सभी गुरूजनों, विद्वानों, लेखकों, मित्रों एवं सहयोगियों के प्रति मै यथोचित सम्मान जनक आभार प्रगट करना अपना पुनीत कर्तव्य समझती हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी रूप में इस शोध कार्य को सम्पादित करने में हमारा किंचित सहयोग किया है। इस कड़ी में –

सर्व प्रथम मैं प्रभात वन्दनीय परम् श्रध्येय गुरूवर डॉ0 विजय कान्त दुबे जी को कोटि–कोटि प्रणाम के साथ हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिनके कुशल निर्देशन, बहुमूल्य सुझाव एवं सतत् प्रोत्साहन का यह शोध प्रबन्ध परिणाम है। आत्मा सम्बन्धी अवधारणा जैसे गुह्य विषय पर अनुसंधान करने की सामर्थ्य और निर्बाध पूर्ण करने का विश्वास मुझे अकिंचन में कदापि न था, परन्तु परम आदरणीय गुरूवर के आत्म–स्पर्शी आशिर्वचनों ने मुझे इस कार्य को कुशल पूर्वक करने हेतु प्रोत्साहित किया एवं वह सामर्थ्य भी प्रदान की जिसके अभाव में यह दुष्कर कार्य कदापि सम्भव न था।

इस क्रम में, प्रो0 राधे श्याम शुक्ल (प्राचार्य, का0 न0 रा0 स्नातकोत्तर महा विद्यालय, ज्ञान पुर, सं0 र0 न0 भदोही) के प्रति मै श्रद्धावनत हूँ जिन्होंने सदैव ही अपने आशिर्वाद से हमें अभिसिंचित किया है और यथा समय पर सद्प्रेरणा देकर, आवश्यक सुविधा उपलब्ध कराकर हमें सहयोग प्रदान किया है।

मैं दर्शन शास्त्र विभाग के अपने गुरूजनों डॉ0 वी0 पाण्डेय, डॉ0 किशोरी लाल एवं डॉ0 सविता भरद्वाज के प्रति सम्मान पूर्वक कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना पुनीत कर्तत्य समझती हूँ, जिन्होंने समय – समय पर स्फूर्तिदायक प्रेरणा दी है।

मैं अपने परम् पूजनीय पतिदेव श्री राजीव अरोड़ा की आजीवन ऋणि हूँ जिनकी प्रेरणा एवं अभिलाषा से प्रेरित होकर मैं इस गुरूतर कार्य को सम्पादित करने में समर्थ हो सकी।

मैं अपने दामाद श्री सिद्धेश वी0 केसरकर एवं बड़ी बेटी श्रीमती आयशा केसरकर तथा छोटी बेटी डॉ0 स्वाती अरोड़ा के प्रति भी आभार नमित करती हूँ जिनसे मुझे प्रगति के पथ पर अविरल, निर्बाध, निरन्तर और अविराम गति के अग्रसर होने का स्नेह–सिंचित यथा सम्भव सहयोग प्राप्त होता रहा।

मैं डॉ0 योगेश कुमार सिंह के साथ ही साथ उन सभी विद्वानों, शुभेच्छुओं, सहयोगियों एवं परिवार–जनों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने येन–केन–प्रकारेण प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अपना अमूल्य सहयोग इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में प्रदत्त किया है। उन सभी का नामोल्लेख कर मैं उनकी विराट संज्ञात्मक शक्ति को सर्वनाम का बौनापन नहीं देना चाहती।

अंत में मैं श्री उमेश कुमार सिंह एवं विजय शंकर श्रीवास्तव (राज प्रिन्टर्स एण्ड जनरल सप्लायर, 53 त्रिवेणी नगर, नैनी, इलाहाबाद) को सहृदयता से धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने अत्यन्त तत्परता एवं गम्भीरता से शोध प्रबन्ध का कम्प्यूटर कम्पोजिंग किया।

ज्ञानपुर
15 मई 2007

श्रीमती कृष्णा अरोड़ा
(शोध छात्रा)